कृषि सहकारिता के विविध आयाम

–मंजुला वाधवा

समाज के हर क्षेत्र को सहकारिता आंदोलन का लाभ पहुँचाने के लिए सभी सहकारी संस्थाओं, बैंकों के लिए कड़े विनियमन और परिचालन मानदंड बनाए जाएं। आज भी देश में मौजूद कुल आठ लाख सहकारी संस्थाओं में से महिला सहकारिताएं मात्र 3 प्रतिशत हैं, अतः महिला सहकारिताएं बढ़ाई जाएं तो श्रेयस्कर होगा। पूरे देश में सहकारिताओं के लिए आधुनिक बाज़ार, अर्थव्यवस्था की जरूरतों के हिसाब से, एकरूप मानदंड बनाना बेहतर होगा। नया मंत्रालय पूरी तरह प्रतिबद्ध है कि सहकारिताओं को सही अर्थों में जनतांत्रिक बनाया जाए जो अपने सदस्यों के वित्तीय हितों के साथ–साथ अपने संगठन की स्वायत्तता भी बरकरार रख सकें।

सहकारिता एक मूलभूत और अंतर्जात गुण है जो हमें साथ–साथ काम करने, साथ में जीने और परस्पर कल्याण तथा सुधार हेतु संकट के समय एक–दूसरे की सहायता करने के लिए तत्पर बनाता है। सहकारिता के माध्यम से लोग सामूहिक शक्तियों का लाभ उठाने और व्यक्तिगत कमज़ोरियों से निजात पाने की क्षमता विकसित कर पाते हैं। पुरानी कहावत है, 'अगर आप उत्तरोत्तर बेहतर होना चाहते हैं तो 'प्रतिस्पर्धी' बनें और यदि आप गुणोत्तर वृद्धि करना चाहते हैं तो 'सहकार' करें।

भारत में सहकारी आंदोलन का इतिहास 125 वर्षों से भी पुराना है। इसका उद्भव उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में आए अकाल के कारण कृषि क्षेत्र में उत्पन्न हुए असंतोष तथा किसानों के वित्तपोषण के लिए संस्थागत संस्थाओं के मौजूद न होने के मद्देनज़र हुआ। 1904 में पास हुए सहकारी ऋण समिति अधिनियम में कृषि सहकारी संस्थाओं के गठन की परिकल्पना की गई।

भारत में सहकारी ऋण सरंचना को मोटे तौर पर ग्रामीण व शहरी, दो हिस्सों में बांटा जा सकता है। 31 मार्च, 2022 की स्थिति के अनुसार, देश के कुल 766 ज़िलों में शहरी सहकारी संरचना में 1600 से अधिक शहरी सहकारी बैंक आते हैं और ग्रामीण सहकारी संरचना में, अल्पावधि और दीर्घावधि, दोनों श्रेणियों में कुल मिलाकर 97,006। अल्पावधि सरंचना के अंतर्गत शीर्ष (राज्य) स्तर पर राज्य सहकारी बैंक, मध्य(ज़िला) स्तर पर केंद्रीय सहकारी बैंक और आधार (गाँव) स्तर पर प्राथमिक कृषि ऋण समितियाँ होती

लेखिका नाबार्ड में सहायक महाप्रबंधक हैं। लेख में व्यक्त विचार निजी हैं।
ई–मेल : manjula.jaipur@gmail.com

हैं। दीर्घावधि सहकारी ऋण सरंचना के अंतर्गत राज्य सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक तथा प्राथमिक सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक आते हैं। हमारे नीति निर्माताओं ने भारत की सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था में सहकारी संरचना की गहरी पैठ को स्वीकार. करते हुए इसके विकास और मज़बूती को काफी महत्व दिया है।

आइए, जायज़ा लेते हैं भारत जैसे विकासशील देश के संतुलित व समग्र आर्थिक व सामाजिक विकास के लिए कितनी अहम हैं सहकारिताएं? सहकारिताएं समुदाय आधारित, स्वैच्छिक, लचीली, सदस्यों की भागीदारी के सिद्धांतों पर चलने वाली प्रजातांत्रिक संस्थाएं होती हैं जिनका काम होता है सभी प्रकार के शोषण से अपने सदस्यों को बचाकर उनके लिए रोज़गार के अवसर पैदा करना, बराबरी और आपसी सहयोग के सिद्धांतों पर चलकर आपसी लाभ की मूल भावना को लेकर काम करना, बड़े पैमाने की बचतें लाकर सदस्यों की भावतौल क्षमता बढ़ाना और हर सदस्य के लाभ के लिए कार्य करना, वर्ग भेद को समाप्त करना और नौकरशाही की बुराइयों से मुक्ति पाकर सभी सदस्यों के विकास के लिए कार्य करना।

बेशक सहकारिता में देश के समग्र विकास की विराट संभावनाएं हैं इसीलिए वर्तमान केंद्र सरकार ने इस सच्चाई को समझा कि सही नीतियाँ बनाकर और पूंजी जुटाकर सहकारी क्षेत्र के प्रशिक्षण और विकास की दिशा में गंभीरता से काम करने की ज़रूरत है। नतीजतन, 2022–23 के केन्द्रीय बजट में सहकारिता मंत्रालय को 900 करोड़ रुपये की राशि आवंटित की गई है। इसी में से 11 करोड़ रुपये वैकुंठनाथ मेहता नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ कोऑपरेटिव मैनेजमेंट (VAMNICOM) में प्रशिक्षण और शोध के लिए दिए गए हैं। एक लाख करोड़ के कृषि अवसरंचना फंड से प्राथमिक कृषि ऋण समितियों (पैक्स), किसान उत्पादक संगठनों(एफपीओ), एग्री–प्रेन्योर्स आदि सभी को फायदा हुआ है। पैक्स ने इस फंड से वित्तीय सहायता लेकर कृषि उत्पादों के भंडारण के लिए वेयरहाउस बनाए हैं। नाबार्ड से अनुदान लेकर स्वयं को बहु–सेवा केन्द्र बनाया है। पैक्स अपने किसान सदस्यों को खेती की नई तकनीकें सीखने के लिए प्रशिक्षण दे सकें, इसके लिए 60 करोड़ रुपये का आवंटन भी सराहनीय कदम प्रतीत होता है। कृषि स्टार्टअप्स के विकास के लिए पैक्स और बहुराज्यीय सहकारी समितियों से अपेक्षित है कि वे खेती में नई–नई तकनीकों जैसे कृत्रिम मेधा(Artificial Intelligence), ब्लॉकचेन टेक्नोलॉजी और मशीन लर्निंग आदि का इस्तेमाल करके खेती को उन्नत बनाएं। राष्ट्रीय सहकारिता नीति बनाने की प्रक्रिया चल रही हैं और 2022–23 की सहकारिता शिक्षण–प्रशिक्षण नीति में सहकारी क्षेत्र में बुनियादी सुविधाओं के विकास, सूचना व संचार तकनीकों के इस्तेमाल, प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने, फसलों की कटाई के बाद उनके प्रबंधन और मूल्यवर्धन आदि पर बल दिया गया है।

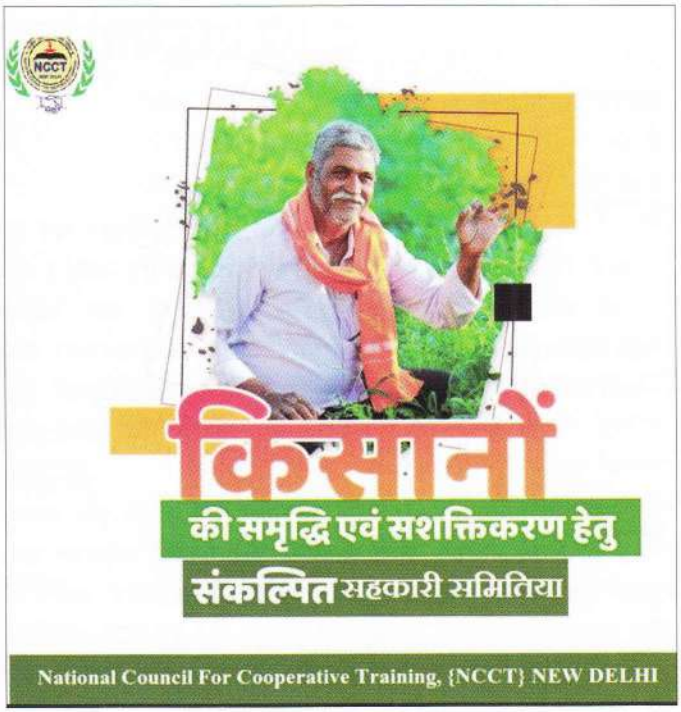

कृषि सहकारिता क्षेत्र की समस्याओं और चुनौतियों की बात करें तो पाते हैं–हमारे संविधान में 'सहकारिता' विषय राज्य सूची में आता है। हर राज्य के अपने सहकारी विधान हैं जिनके कारण उनके सुचारू कार्यान्वयन में काफी मुश्किलें आती हैं। सहकारी बैंक हों या संस्थाएं, आज भी व्यावहारिक दृष्टि से उनका नियंत्रण राजनीतिज्ञों के हाथों में है। निदेशक मंडल के सदस्यों की जवाबदेही तय करना भी टेढ़ी खीर है। हालांकि बैंकिंग विनियमन अधिनियम को भी 2020 में संशोधित करके सहकारिताओं पर लागू नियमों–कानूनों को कड़ा बनाने का प्रयास किया गया है किंतु वास्तव में, पेशेवराना और पारदर्शी अंदाज़ में बोर्ड नियुक्तियाँ आज भी देखने को नहीं मिलती। आम जन में सहकारिता आंदोलन और सहकारी बैंकों के नियमों–विनियमों के बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं है।

VAMNICOM द्वारा करवाई गई स्टडी बताती है कि महाराष्ट्र, गुजरात और कनार्टक जैसे राज्यों में सहकारी बैंक/संस्थाएं काफी अच्छी स्थिति में हैं जिन्हें केन्द्र सरकार से भी इक्विटी या कार्यशील पूँजी के रूप में वित्तीय सहायता मिलती है जिसके कारण अन्य राज्यों में सहकारिता का विकास करने के लिए धन की कमी पड़ जाती है। बेहद ज़रूरी है कि अन्य राज्यों की सहकारी संस्थाओं को भी सरकार की ओर से वित्तीय तथा अन्य सहायता मिले ताकि सहकारिता आंदोलन उन राज्यों में भी सफल हो सके। प्रशासनिक विसंगति यह है कि सहकारिता मंत्रालय के गठन से पहले कृषि मंत्रालय ही इनके काम को देखता था। फलस्वरूप अब कृषि और डेयरी के मुकाबले आवास और श्रम के क्षेत्र की ओर सहकारिता का रुझान अधिक देखने को मिल रहा है।

एक समय था जब 'पैक्स' ही किसानों को कृषि ऋण दिया करती थी, आज वाणिज्यिक बैंकों ने इसमें अपना आधिपत्य जमा

लिया है, नतीजतन 'पैक्स' कुल कृषि ऋण का मात्र 10 फीसदी ही दे रही हैं। इस प्रकार सहकारी संस्थाओं की कम हो रही भूमिका यकीनन गंभीर चिंता का मुद्दा है। सरकार और जनता दोनों की ओर से सहकारिताओं को आर्थिक और वित्तीय संस्था के रूप में मान्यता नहीं मिल रही। अतः सरकार के 'सहकार से समृद्धि' के स्वप्न को साकार करने के उद्देश्य से अलग सहकारिता मंत्रालय का गठन निश्चय ही सराहनीय प्रयास है। इस मंत्रालय के स्पष्ट उद्देश्य हैं–सहकारिता आंदोलन को मज़बूत बनाने के लिए नीतिगत, प्रशासनिक और कानूनी माहौल तैयार करना, सहकारिता को आधार स्तर पर आम जन तक पहुँचने में कामयाब जन आंदोलन का रूप देना, पैक्स को मल्टी सर्विस सेंटर के रूप में विकसित करके इनका व्यवसाय बढ़ाने में मदद करना। इसके अलावा, यह मंत्रालय इफको, कृभको जैसे मल्टी सर्विस सेंटर्स के नियंत्रक केंद्रीय रजिस्ट्रार ऑफ सोसायटीज़ का भी पर्यवेक्षण करेगा।

पिछले कुछ सालों में सहकारी बैंकों में हो रहे घोटाले, गबन और कुप्रबंधन के कारण आम जन को जो झेलना पड़ा है, उसे देखते हुए भारत सरकार ने 2020 में बैंकिंग विनियमन अधिनियम को संशोधित करके शहरी सहकारी बैंकों को सीधे रिज़र्व बैंक के नियंत्रण में ला दिया। जमाकर्ताओं की गाढ़ी कमाई को सुरक्षित रखने के प्रयोजन से अब तक सहकारी बैंकों को मिल रही छूटें समाप्त कर दी गईं। हालांकि ये नए व कड़े मानदंड केवल जमाराशि स्वीकार करने वाले सहकारी बैंकों के लिए बनाए गए हैं और सहकारी बैंकों को नए विनियामक मानदंडों का पालन करते हुए वांछित स्तर तक पहुँचने में समय लगेगा। बेहतर होगा कि समाज के हर क्षेत्र को सहकारिता आंदोलन का लाभ पहुँचाने के लिए सभी सहकारी संस्थाओं, बैंकों के लिए कड़े विनियमन और परिचालन मानदंड बनाए जाएं। आज भी देश में मौजूद कुल आठ लाख सहकारी संस्थाओं में से महिला सहकारिताएं मात्र 3 प्रतिशत हैं, अतः महिला सहकारिताएं बढ़ाई जाएं तो श्रेयस्कर होगा। पूरे देश में सहकारिताओं के लिए आधुनिक बाज़ार, अर्थव्यवस्था की जरूरतों के हिसाब से, एकरूप मानदंड बनाना बेहतर होगा। नया मंत्रालय पूरी तरह प्रतिबद्ध है कि सहकारिताओं को सही अर्थों में जनतांत्रिक बनाया जाए जो अपने सदस्यों के वित्तीय हितों के साथ साथ अपने संगठन की स्वायत्तता भी बरकरार रख सकें।

अब ज़रा आज की वैश्वीकरण की दुनिया में सहकारी संस्थाओं की प्रासंगिकता पर विचार कर लें– बेशक वैश्वीकरण ने आम जन के लिए महत्वपूर्ण नए क्षेत्रों में अतिरिक्त अवसर उत्पन्न किए हैं किंतु वाणिज्यिक दृष्टि से उन्हें व्यवहार्य नहीं माना जाता है। पूरी दुनिया के वित्तीय क्षेत्र को अपनी चपेट में लेने वाली महामारी कोविड–19 से वैश्विक अर्थव्यवस्था अभी पूरी तरह उबर नहीं पाई है। नतीजतन, भारत जैसे विकासशील देश में समावेशी और समान विकास की ओर अधिक ध्यान दिया जाना अति आवश्यक है। हमारी सरकार और बैंकों को समझ में आ चुका है कि वित्तीय समावेशन और साक्षरता के बिना वित्तीय स्थिरता को बरकरार रखना मुश्किल होगा। निःसंदेह स्वयं सहायता और परस्पर सहयोग के सिद्धांतों के आधार पर निर्मित सहकारी संस्थाएं वंचित लोगों को भी अपने साथ लेकर मूलभूत बैंकिंग गतिविधियों में उन्हें शामिल करने की महती भूमिका निभाती हैं।

भारत जैसा देश जहाँ भूजोतों का औसत आकार मात्र 1.08 हेक्टेयर हैं और छोटे और सीमांत किसान कुल का 85 प्रतिशत सहकारी संस्थाएं अनेक कारणों जैसे वित्तीय व बुनियादी सुविधाओं की कमी, प्रबंधकीय व्यावसायिकता की कमी, विशेषज्ञता और क्षमता निर्माण की कमी, राजनीतिज्ञों के हस्तक्षेप, सामाजिक समानता और जागरूकता के अभाव आदि के कारण छोटे किसानों का जीवन–स्तर बेहतर बनाने की दिशा में उल्लेखनीय सफलता हासिल नहीं कर पाईं। इन कमियों को दूर करने के लिए किसान उत्पादक संगठनों(FPOs) की अवधारणा लाई गई। एफपीओ वह पंजीकृत संस्था है जो प्राथमिक उत्पादक यानी किसान मिलकर बनाते हैं, अलग–अलग खेती करते हैं और इस संगठन के ज़रिए उनकी पहुँच निवेश, तकनीक, इनपुट्स और बाज़ार आदि तक किफायती तरीके से हो पाती है और उन्हें बड़े पैमाने की बचतों का लाभ मिल पाता है।

एफपीओ के लाभ

- किसानों की आय में सुधार
- बैंकों/वित्तीय संस्थाओं से कर्ज़ लेने के लिए बेहतर पहुँच
- सरकार की फसल बीमा और सामाजिक सुरक्षा योजनाओं तक बेहतर पहुँच
- बड़े पैमाने की बचतें
- बिचौलियों से मुक्ति
- उत्पादन–उन्मुख की बजाय बाज़ार–उन्मुख खेती

मास प्रोडक्शन हमारे देश के अर्थतंत्र के विकास के लिए ज़रूरी है 'साथ ही, 130 करोड़ की आबादी वाले हमारे विशाल देश में प्रोडक्शन बाई मासेज़' भी बेहद ज़रूरी है और इसका कॉन्सेप्ट सहकारिता के सिवा कहीं से नहीं आता है। इसी नीति पर ध्यान केंद्रित करते हुए सरकार द्वारा फ्री रजिस्ट्रेशन, कंप्यूटराइज़ेशन, लोकतांत्रिक पद्धति से चुनाव, सक्रिय सदस्यता सुनिश्चित करना, संचालन और नेतृत्व में व्यावसायिकता और पारदर्शिता लाने, ज़िम्मेदारी और जवाबदेही तय करने आदि जैसे महत्वपूर्ण फैसले लिए गए हैं। साथ ही, प्रभावी मानव संसाधन नीति, जिसमें पारदर्शिता से भर्तियां हों, बुनियादी ढांचे का सशक्तीकरण, तकनीक का उपयोग और इसके लिए नीति–नियम और दिशानिर्देश आदि नए ढंग से बनाने की रूपरेखा भी तैयार की जा रही है।

अर्थव्यवस्था के उदारीकरण तथा संस्थागत सुधारों के फलस्वरूप, डेयरी और आवास जैसे क्षेत्रों में कुछ सहकारी संस्थाएं कामयाब रहीं। वर्ष 2004 में वैद्यनाथन समिति ने इन्हें सुधारने के लिए प्रयास किए किंतु विरासत की समस्याओं के कारण इन्हें भी सीमित सफलता मिली और स्वयं सहायता समूहों और संयुक्त देयता समूहों जैसी नयी विशिष्ट संस्थाओं ने आकर सहकारी संस्थाओं को दरकिनार कर दिया। तब इस अंतराल को भरने के लिए किसान उत्पादक संगठन, छोटे और हाशिये पर पर रहने वाले किसानों तक उनकी पहुँच होने के कारण बेहतरीन विकल्प के रूप में सामने आए। भले ही एफपीओज़ के उद्देश्य सहकारी संस्थाओं से मेल खाते हैं किंतु दोनों में बुनियादी अंतर हैं जैसे एफपीओ कंपनी अधिनियम के भाग IX-A के अंतर्गत गठित हो सकते हैं या सहकारी संस्था के रूप में। हालांकि 2013 की एफपीओ पॉलिसी में स्पष्ट प्रावधान है कि इन्हें सहकारी संस्थाओं की भांति राजनीतिज्ञों के इशारों पर चलने वाली संस्था बनने से बचाया जाए। दूसरी बात, कृषि इनपुट्स की खरीद और फसल की बिक्री दोनों ही लिहाज से ये बाज़ार–उन्मुख संस्थाएं हैं जो व्यावहारिक दृष्टि से तभी चल सकती हैं अगर पेशेवराना अंदाज़ में किसानों के हित में काम करें। सिक्के का दूसरा पहलू देखें, तो पहली समस्या है एफपीओ का आकार यानी सदस्य संख्या। किसानों को फायदा तभी मिल सकता है अगर एफपीओ का टर्नओवर अपने गठन के शुरुआती 2–3 सालों में कम से कम 5 करोड़ हो और निवल लाभ 30 से 50 लाख रुपये और यह तभी हो सकता है अगर इनके शेयरहोल्डर सदस्य 2000–3000 तक हों। लिहाज़ा, एफपीओ गठन के लिए निर्धारित न्यूनतम 300 सदस्य(पहाड़ी इलाकों में 100–150) होने के मानदंड में बदलाव की ज़रूरत है। अगली समस्या है इन्हें किफायती दरों पर पूंजी मुहैया हो पाना। कैसी विडम्बना है कि किसानों को बैंक तो आजकल 7–9 फीसदी पर कर्ज़ दे रहे हैं किंतु उनके संगठनों यानी एफपीओ को सूक्ष्म वित्तीय संस्थाओं से 18 फीसदी पर ऋण लेना पड़ता है। इन्हें सरकार से 2 करोड़ तक के कर्ज़ पर क्रेडिट गारंटी की सुविधा तो है किंतु इनकी कार्यशील पूँजी की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए ब्याज दरें घटाए जाने की ज़रूरत है।

अगली बड़ी ज़रूरत है पेशेवर प्रबंधक जो कार्यकुशलता से एफपीओ चला सकें। आज अगर अमूल सहकारिता में अगुआ है तो इस सफलता के पीछे वर्गीज़ कूरियन और उनकी टीम का बड़ा हाथ रहा। एनडीडीबी, एसएफएसी, एनसीडीसी जैसी संस्थाओं के विशेषज्ञों को इस क्षेत्र की ओर आकर्षित करना होगा। पुराने बाज़ार मॉडलों को छोड़कर यह भी ज़रूरी है कि अब एफपीओ ई–नाम, कमोडिटी एक्सचेंज, फ्यूचर मार्किट, रेटिंग एजेंसी, रेगुलेटिड वेयरहाउस जैसे बिक्री के नए माध्यम अपनाएं। ब्रांड–बिल्डिंग की ओर ध्यान देना भी उतना ही आवश्यक है ताकि एफपीओ की पहुँच बड़े और गुणवत्तापरक बाज़ारों तक हो सके। एफपीओ फेडरेशन बनाकर भी इनके काम को तेज़ गति से आगे बढ़ाया जा सकता है। प्रसिद्ध सहकारिता विशेषज्ञ ए बी गोरवाला के शब्दों को नया रूप देने की ज़रूरत है, "सहकारिताएं असफल हो चुकी हैं किंतु एफपीओज़ हर हाल में सफल होने चाहिए"।

सहकारिता विकास हेतु पहल

अब नज़र डालते हैं भारत सरकार द्वारा सहकारिता क्षेत्र के विकास के लिए उठाए गए अभिनव कदमों पर– 06 जुलाई, 2021 को सहकारिता मंत्रालय का गठन इस दिशा में मील स्तम्भ साबित हुआ है। हाल ही में 08 सितम्बर, 2022 को केंद्रीय सहकारिता मंत्री श्री अमित शाह ने सहकारिता पर आयोजित 02 दिवसीय सम्मेलन को संबोधित करते हुए कहा, "अब समय आ गया है कि भारत में 125 साल पुराना सहकारिता का विचार और संस्कार आज की ज़रूरतों के अनुरूप अपने आप को मज़बूत करके एक बार फिर सबका विश्वास अर्जित करे। ज़रूरत है सहकारिता में 'टीम' इंडिया का भाव जगाने की ताकि प्रधानमंत्री के 5 ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था का सपना साकार करने में सहकारिता का अहम योगदान हो"।

कृषि के क्षेत्र में सहकारिता का महत्व निर्विवाद है। हमारे देश में डेयरी और हाउसिंग की डेढ़ लाख समितियाँ हैं, 97,000 पैक्स हैं और 46,000 लघु सहकारी समितियाँ हैं। देश के 51 प्रतिशत गाँव और 94 प्रतिशत किसान किसी ना किसी रूप में कोऑपरेटिव से जुड़े हुए हैं। देश के कुल एग्रीकल्चर क्रेडिट का 20 प्रतिशत कोऑपरेटिव सेक्टर देता है, खाद वितरण का 35 प्रतिशत कोऑपरेटिव सेक्टर करता है, वही खाद का उत्पादन 25 प्रतिशत, चीनी उत्पादन 31 प्रतिशत, दूध उत्पादन 10 प्रतिशत से ज़्यादा कोऑपरेटिव के माध्यम से होता है। गेहूं की खरीद 13 प्रतिशत से ज़्यादा, धान की खरीद 20 प्रतिशत से ज़्यादा और मछुआरों का बिज़नेस 21 प्रतिशत से ज़्यादा कोऑपरेटिव सेक्टर करता है। ऐसे में क्या ज़रूरी नहीं कि सहकारिता के क्षेत्र में पूरे देश में एकरूप

नीतियां अपनाई जाएं? देश के विकसित राज्य जो ज़्यादातर पश्चिम और दक्षिण में हैं, विकासशील राज्य जो मध्य और उत्तर में हैं, अल्पविकसित राज्य जो पूर्व और पूर्वोत्तर में हैं, सभी के सहकारी विभाग एक ही मार्ग और एक ही विषय को लेकर चलें।

कोविड काल में भी केंद्र सरकार के प्रयासों से भारत के 70 करोड़ लोगों के जीवन–स्तर में सुधार आया है–घर, पेयजल, गैस सिलेंडर, दो साल से मुफ़्त अनाज, बिजली सुविधाओं और पांच लाख रुपये तक की सभी स्वास्थ्य सेवाओं के माध्यम से। अब इनकी आकांक्षा जागी है और ये करोड़ों लोग देश के विकास में अपना योगदान देना चाहते हैं लेकिन इनके पास पूंजी बहुत कम है तो इसका हल सिर्फ़ 'सहकारिता' ही हो सकता है। सहकारिता एकमात्र ऐसा क्षेत्र है जिसमें कम से कम पूंजी होने पर भी बहुत सारे लोग एक साथ आकर बड़ा योगदान दे सकते हैं, गुजरात में अमूल इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। इस प्रकार के सर्वांगीण विकास पर विचार करने के लिए सहकारी नीति तैयार करने के लिए हाल ही में एक समिति बनाई गई है जिसमें सभी राज्यों का प्रतिनिधित्व है।

'मास प्रोडक्शन' हमारे देश के अर्थतंत्र के विकास के लिए ज़रूरी है। साथ ही, 130 करोड़ की आबादी वाले हमारे विशाल देश में 'प्रोडक्शन बाई मासेज़' भी बेहद ज़रूरी है और इसका कॉन्सेप्ट सहकारिता के सिवा कहीं से नहीं आता है। इसी नीति पर ध्यान केंद्रित करते हुए सरकार द्वारा फ्री रजिस्ट्रेशन, कंप्यूटराइज़ेशन, लोकतांत्रिक पद्धति से चुनाव, सक्रिय सदस्यता सुनिश्चित करना, संचालन और नेतृत्व में, व्यावसायिकता और पारदर्शिता लाने, ज़िम्मेदारी और जवाबदेही तय करने आदि जैसे महत्वपूर्ण फैसले लिए गए हैं। साथ ही, प्रभावी मानव संसाधन नीति, जिसमें पारदर्शिता से भर्तियां हों, बुनियादी ढांचे का सशक्तीकरण, तकनीक का उपयोग और इसके लिए नीति–नियम और दिशानिर्देश आदि नए ढंग से बनाने की रूपरेखा भी तैयार की जा रही है।

अगली आवश्यकता है, 'पैक्स' को मल्टीपर्पज़ बनाना–अभी लगभग 65,000 पैक्स सक्रिय हैं और सरकार की योजना अगले 5 साल में तीन लाख नए पैक्स बनाने की है। ये पैक्स डेयरी के क्षेत्र में होंगे, एफपीओ भी होंगे, जल, गैस का वितरण करेंगे, गोबर गैस बनाएंगे, भंडारण का काम भी करेंगे। जिन पंचायतों में पैक्स नहीं हैं, उनकी भी पहचान की गई है। अगर पैक्स को इतना बहूद्देश्यीय बनाना है तो इसके अकाउंटिंग सिस्टम को हमें नए सिरे से देखना होगा। इसके लिए प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने पैक्स से एपैक्स तक, सुचारू रूप से सीमलैस ट्रांज़ेक्शन के लिए, पैक्स के कंप्यूटराइज़ेशन का निर्णय किया है। प्रथम चरण में 65,000 पैक्स का कंप्यूटरीकरण किया जाएगा और इसके लिए नया सॉफ्टवेयर भारत सरकार का सहकारिता विभाग बना रहा है। इसके बाद पैक्स, डिस्ट्रिक्ट कोऑपरेटिव बैंक, स्टेट कोऑपरेटिव बैंक और नाबार्ड, चारों एक ही सॉफ्टवेयर और एकरूप अकाउंटिंग सिस्टम से चलेंगे जिससे ऑनलाइन ऑडिट की भी सुविधा हो जाएगी। पैक्स के उपनियम स्वीकार करने, उनके कंप्यूटरीकरण और नए सॉफ्टवेयर को अपनाने से बहुत सारी कठिनाइयाँ समाप्त हो जाएंगी। यह सॉफ्टवेयर देश की सभी भाषाओं में उपलब्ध होगा जिससे हर राज्य अपने पैक्स का कारोबार अपने राज्य की भाषा में कर सकेगा।

इसके अलावा, निष्क्रिय पैक्स को लिक्विडेट करके नए पैक्स बनाने, पैक्स को अल्पावधि के अलावा दीर्घावधि ऋण देने में सक्षम बनाने, सहकारिता विश्वविद्यालय खोलने, एक मल्टी–स्टेट बीज उत्पादन कोऑपरेटिव बनाने, अमूल, इफको, नेफेड, एनसीडीसी और कृभको आदि को मिलाकर एक मल्टीस्टेट एक्सपोर्ट हाउस बनाने आदि जैसे अहम फैसले भी लिए गए है, जो खादी के उत्पादों, हैंडीक्राफ्ट और एग्रीकल्चर उत्पादों को विश्व भर के बाज़ार में एक्सपोर्ट करने का काम करेगा। पैक्स का कंप्यूटरीकृत करने के अलावा मल्टी स्टेट को–आपॅरेटिव कानून को संशोधित करने और मॉडल बायलॉज़ बनाने के काम भी किए जाने हैं। सहकारिता मंत्रालय ने कोऑपरेटिव को मज़बूत करने के लिए पिछले एक साल में बहुत सारे काम किए हैं।

उपलब्धियां

- चीनी मिलों पर अतिरिक्त आयकर लगता था जो अन्यायपूर्ण था। सहकारिता मंत्रालय बनने के एक महीने के अंदर ही इसे समाप्त कर कोऑपरेटिव को समानता का स्टेटस देने का काम किया गया है।
- सहकारी समिति पर अधिभार को 12 प्रतिशत से घटाकर 7 प्रतिशत कर दिया गया है। देश भर की कोऑपरेटिव को इसका फायदा हुआ।
- एमएटी दर को 18.5 प्रतिशत से घटाकर 15 प्रतिशत पर लाकर कॉरपोरेट के लेवल पर लाने का काम किया गया है।
- GeM से खरीद करने और बेचने के लिए कोऑपरेटिव्स को मान्यता दी गई है।
- ग्रामीण और शहरी सहकारी वाणिज्य बैंकों का व्यवसाय बढ़ाने के प्रयोजन से आरबीआई से बदलाव कराने में भी सफलता मिली है और
- शहरी सहकारी बैंक और बैंकिंग क्षेत्र के आरबीआई के साथ सभी लंबित सवालों की भी लिस्टिंग हो चुकी है।

संक्षेप में, सहकारिता राज्यों का क्षेत्र है और जब तक राज्य की इकाइयां इन बदलावों के लिए खुद को तैयार नहीं करती, यह आंदोलन पूरी तरह सफल नहीं हो सकता। इन सभी बदलावों को राज्य भी अपनाएं और इस रोडमैप में सभी स्टेकहोल्डरों का योगदान हो तभी 'सहकारिता' को ताकत मिल सकती है। इसमें दो राय नहीं कि कोऑपरेटिव क्षेत्र को अगले 100 साल में अर्थ तंत्र का एक मज़बूत स्तंभ बनाकर ही देश के करोड़ों गरीबों के कल्याण का लक्ष्य साधा जा सकेगा। ❑